रक्षाबंधन (गुरु-वंदना दिवस)

(महत्त्वपूर्ण चिन्तनीय तथ्य)

प्रवचनांश - पूज्य बाबू 'युगल' जी, कोटा
संकलन - ब्र. नीलिमा जैन, कोटा

दिगंबर जैन शासन अति प्राचीन व वस्तु विधानों के ध्रुव धरातल पर प्रतिष्ठित एक निराला दर्शन है, जो प्राणीमात्र के लिए शाश्वत सुख का पक्ष निर्दिष्टि करता है। इस दर्शन का अंतरंग पक्ष तो चाँदनी सा उज्ज्वल है ही लेकिन इसका बहिरंग पक्ष भी समानरूप से स्वच्छ व उजला है। साथ ही इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके शब्द-शब्द में सदा से ही वीतराग भाव का ही पोषण होता रहा है और इस आर्ष परम्परा के सुदृढ़ स्तम्भ, सिद्धों के प्रतिछन्द, महा तपोनिधि निर्ग्रन्थ-श्रमण जो अपनी चैतन्य वाटिका में आत्मस्थ हो, उसके स्वरूप सौन्दर्य का निरन्तर दर्शन व संवेदन किया करते हैं, जिनकी सुधारस झरती वाणी से क्षण भर में विभावों की बस्ती उजड़ जाती है ऐसे साक्षात् मोक्षमार्ग के प्रणेता से भविजनों के मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। अत: चारित्रवंत, अन्तर्बर्हि नग्न मुनि भगवन्तों की वैरागी छाया में ही हमें वर्ष भर में आने वाले समस्त पर्वों को मनाना चाहिए क्योंकि इन सभी पर्वों में ज्ञान व वैराग्य का संदेश ही प्रवाहित होता है, अन्य कुछ नहीं। और एक महत्त्वपूर्ण बात यह

है कि इन पवित्र लोकोत्तर पर्वों में व्यक्ति के चित्त में विशुद्धि की धारा इतनी बढ़ी-चढ़ी, प्रचुरता को लिए हुए होती है कि उसमें मिथ्या रूढ़ियों, अंधविश्वास, पापाचार व रागादि की तीव्रता के लिए तनिक भी अवकाश नहीं है।

लेकिन फिर भी हृदय में एक गहरी पीड़ा होती है कि वर्तमान में भौतिकता की चकाचौंध में लिप्त व लिप्सा वाले बाल, युवा, वृद्धों ने अनेक, आडम्बरों, रूढ़ियों व कुप्रथाओं द्वारा निश्चित रूप से पर्व के भावात्मक अंग को संपूर्ण रूप से ढक दिया है, अधिक क्या कहें प्राय: लुप्त सा हो गया है। ऐसा ही 'रक्षाबंधन' नाम से प्रचलित यह पर्व प्रतिवर्ष 'श्रावण शुक्ल पूर्णिमा' के दिन अखिल भारत में बड़े उल्लास के साथ मनाया जाता आ रहा है। अन्य मतावलंबी तो इसे अपने-अपने स्वार्थवश या किसी भी लौकिक प्रयोजन से मनाते हैं किन्तु उन्हीं के अनुकरण पर हम सुधीजन जैनी भी और कुछ नहीं, तो सात सौ मुनिराजों की रक्षा का तर्क देकर उन्हीं कृत्रिम आडम्बरों व चली आ रही थोथी रीतियों के साथ इस पर्व को नि:संकोच भाव से मनाते आ रहे हैं, इतना ही नहीं, आश्चर्य की बात यह है कि सारा जैन समुदाय इसको 'रक्षाबंधन' कहकर पुकारने लगा है।

एक मार्मिक तथ्य हमारे सामने यह है जिस पर निष्पक्ष दृष्टि से, पर्व का व्यामोह त्याग कर विचार किया जाये तो बताइये कि मुनिराजों की रक्षा व बंधन टूटने का 'रक्षाबंधन' से क्या संबंध है ? वास्तव में दोनों की कोई संगति बैठती ही नहीं और सचमुच इस पर्व का कोई आधार स्थल सारे जिनागम में कहीं उपलब्ध नहीं होता। दूसरा जैन कथा ग्रन्थों में पूर्णिमा जैसी अनेक तिथियों पर तो सैंकड़ों मुनिराजों पर उपसर्ग का उल्लेख मिलता है और उपसर्ग दूर होने का भी - बताइये फिर हम उनके लिए रक्षाबंधन क्यों नहीं मनाते ? क्या उनमें और इन गुरुओं में हम कोई अन्तर देखते हैं ? या त्रिकाल में इनका स्वरूप एक ही प्रकार का होता है ?

इसलिए वास्तव में इस पर्व का कोई औचित्य सिद्ध नहीं होता।

एक बार गंभीर व शांत चित्त होकर पूरे पर्व का आलोहण करे तो पता चलेगा कि पर्व के संपूर्ण क्रियाकलाप कल्पित अपनी मनोकल्पना से खड़े किये गये हैं और यदि मुनिराज को इसका आधार बनाया जाये तो उनके साथ घटी उस भयावह, हृदय विदारक घटना से हमारे परिणाम में श्रीगुरुओं के प्रति भक्ति, वंदन, समर्पण व वात्सल्य का भाव जागना चाहिए - न कि कोरा मनोरंजन ही मनोरंजन, खुशियाँ या आमोद-प्रमोद। सचमुच इसे हमें पर्व के रूप में नहीं, बल्कि 'महा वैराग्य दिवस', गुरु वंदना दिवस के रूप में मनाना चाहिए। तभी हम मुनि भगवंतों के उपासक, उनके चरण चंचरीक, कहलाने के अधिकारी हैं, वरना उनके ही नहीं, संपूर्ण जैन शासन के विरोधी कहे जायेंगे।

यदि समग्र जैन बन्धु व परिजन, मित्रगण अपने हठाग्रह को छोड़, उस दर्दनाक घटना पर सूक्ष्मता से दृष्टिपात करें, तो अरे रे! उपसर्ग की धधकती ज्वाला के बीच, वे मेरु से निष्कंप क्षमावंत संत, मौन मुखाकृति में ध्यानस्थ खड़े हैं और अपने अतुल आत्मवैभव में से प्रचुर आनंद रस पीने में तल्लीन हैं, जिन्हें उपसर्ग करने वालों के प्रति न ही कोई क्रोध न ही कोई क्षोभ और न ही आर्त परिणाम बल्कि समता का समरसी भाव निरन्तर प्रवाहित हो रहा था। ऐसे मुक्ति के मूर्तमान, अलौकिक साधु हमारे वंदन पूजन, वैयावृत्ति के साधन होते हैं।

ओहो! क्षण मात्र के लिए भी उस घटना का स्मरण हो जाए तो नेत्रों से अश्रुधार बह चले, लगातार तीन-चार दिवस तक चारों ओर भयंकर बाढ़ (अग्नि) जलती रही, मुनिराजों के तन का स्पर्श कर लपटे आसमान को छूने लगीं, उनके शरीर घास के ढेर से जल रहे थे। इधर सारे नगर में हाहाकार मचा था, हृदय को कंपित कर देने वाला यह करुण दृश्य! सारे नगरवासी उपसर्ग के निवारणार्थ अनेक उपाय सोच-सोच कर क्षुब्ध थे, फिर भी निराशा ही नजर आ रही थी। आबाल-वृद्ध की आँखों से आँसू

थम नहीं पा रहे थे। हस्तिनापुर में स्थान-स्थान पर यही चर्चा थी कि कैसे मुनिराजों की रक्षा की जाए ? लेकिन सभी निरुपाय से निस्तब्ध हो देखते रहते हैं।

देखो ! विधि की विचित्रता - उन महाविरागी क्षमावृत्ति के धारी संतों पर भी कर्मोदय का यह चक्र तीव्र गति से चलता रहा, उसे कौन रोक सकता है, महाबली योद्धा जैसे भी निर्बल हो जाते हैं, अरे "ये पुण्य और पाप तो मौसमी हवायें हैं, जो ज्ञानी सम्यग्दृष्टियों व आत्मरसिक भावलिंगी संतों के अन्तस को छू भी नहीं सकतीं।"

अरे ! क्या ज्ञात है हमें - उस विशाल संघ में रत्नत्रय से सुशोभित, कोमल-कोमल बाल मुनि वयोवृद्ध एवं शारीरिक दुर्बलताग्रस्त मुनिश्वर विद्यमान थे, पर धन्य है मुनिदशा, शूरवीर श्रमण, जिनके बाहर में तो तप्तायमान ज्वालामुखी और भीतर बर्फीली हवा चल रही थी।

हा ! हा ! हम कल्पना तो करें कि कई-कई दिन के निराहारी, उपवासी 700 मुनिवर जिनके शरीर जल-जल कर हड्डियों का ढांचा रह गया, धुएं से कंठ बुरी तरह रुंध चुके हैं, अंगों से रुधिर की धार बह रही है, अरे कोई तो धरती पर मूर्च्छित हो गिर चुके हैं, चिन्गारियों से आँखें फूट चली हैं, सर्वत्र ही ऐसा दुःषम वातावरण देखे, सोचो जरा ! क्या श्रावकों ने आहार किया होगा ? अरे आहार तो क्या, पानी की एक बूँद भी जिनके गले में नहीं उतरी होगी, बल्कि तीन दिन श्रावकों ने चौके बंद कर दिये होंगे और उनके चौके में मिठाइयाँ नहीं बन रही थी। सोचे जरा ! हम जैनी विवेक की मशाल लेकर, कुतर्क नहीं दें, "क्योंकि कुतर्क से लिप्त बुद्धि में सत्य को पाने की क्षमता नहीं होती।" सत्य तो एक ही महा शक्तिशाली होता है, जिसके आगे करोड़ों कुयुक्तियाँ परास्त हो जाती हैं।

सहसा ही अनेक ऋद्धियों के धारक विष्णु कुमार मुनिराज ने दीक्षा छेद बावनियाँ का रूप धारण कर तत्काल ही महासंघ का उपसर्ग दूर

किया। फिर उसके पश्चात् शीघ्र ही सारे नगरवासियों ने सात सौ मुनिराजों की परम भक्तिपूर्वक वैयावृत्ति की, सैंकड़ों श्रावक उनके उपचार में जुटे थे, यह तो स्वाभाविक है ही कि संघ में किसी के सिर जल चुके थे, किसी के हस्तपादादि, किसी की श्वांसे घुट रही थीं और किसी को उदर में असह्य पीड़ा। ऐसी देहादि की तीव्र वेदना देखकर श्रावकों द्वारा उनके औषधादि व बाह्य उपचार किये जा रहे होंगे, कुछ श्रावकजन उनके पड़गाहन आदि की विधि में व्यस्त थे - देह व आहारादि से अत्यन्त निर्ममत्व, मृग व भ्रमर जैसी वृत्ति के धारक आनंद भौजी सैंकड़ों मुनि भगवन्त अपनी कड़क नियमावली पूर्वक आहार चर्या के लिए श्रावकों के द्वार पहुँचे होंगे, नवधा भक्ति के साथ किसी ने रुंधे कंठ से जल की कुछ बूँदें, किसी ने दूध की कुछ घूँटे, किसी ने रोटी के एक-दो ग्रास लेकर अपने उस तुच्छ विकल्प की पूर्ति की होगी। अरे! इनमें से कई तो निराहार रहे होंगे। अरे! कितना कहें, उस संकटकालीन दृश्य के लिए शब्द नहीं हैं।

देखो जरा! महासंतों की इस परिचर्या व सेवादान से न तो श्रावकों के मन में कोई संतोष व तुष्टि का भाव था और न ही कोई प्रसन्नता, क्योंकि मुनिराजों की यह अवस्था कितने लंबे समय तक चली होगी और श्रावकों को उनके लिए क्या-क्या करना पड़ा होगा, यह हमारी लघु सोच से परे है।

अभी-अभी कुछ दिवस पूर्व एक समाचार सुनने को मिला कि - भारत के ही किसी सम्पन्न परिवार पर ऐसी घटना घटी, उस परिवार में माता-पिता का इकलौता पुत्र विदेश-प्रवास से हवाई जहाज द्वारा पुनः अपने घर लौट रहा था, बीच में ही हवाई-जहाज किसी दुर्घटना से ग्रस्त हो गया और ऐसा समाचार मिला कि सारे यात्रियों की मृत्यु हो गई, बस एक ही व्यक्ति किसी भाग्य से बच गया है। वह कौन है ? इसका पता नहीं था। माँ अपने बच्चे के वियोग में बहुत विलाप कर रही है, मेरा बेटा! तू

मुझे छोड़कर क्यों चला गया।'' पागल-सी हो जाती है, कुछ ही घंटे बीते थे, तभी अचानक उसका जिंदा-बेटा माँ गोदी में आकर गिर जाता है, माँ उसका चेहरा देख और जोर-जोर से रोने लगती है, बाहों में भरती है, लेकिन पुत्र को पाकर भी वह पूरी तरह शोक में डूबी हुई है, उसे बच्चे के साथ बीती घटना बारम्बार याद आती रहती है, परन्तु चेहरे पर जरा प्रसन्नता नहीं।

ऐसे ही हमारे परम पिता गुरु गौरव सात सौ मुनीश्वर का उपसर्ग दूर तो हुआ, लेकिन उसके पश्चात् भी श्रावकों के चित्त में विव्हलता व वेदना की सीमा नहीं थी, घटना के स्मरण मात्र से उनका रोम-रोम कंपित था, मुख पर हर्ष की रेखा तनिक भी नहीं सारा वातावरण अत्यन्त रोमांचक बना हुआ था, ऐसे समय में तो एक मात्र वैराग्यवर्धिनि बारह भावनाओं का चिन्तवन किया जाता है, जो हमारे संतप्त हृदय पर शीतल झरने सी गिरती है।

इस पर्व को मनाने का एक आधार भारत के अन्य धर्मावलंबी यह भी बताते हैं और इसके साथ जैन भी -

प्राचीन-समय में राजाओं का शासन हुआ करता था, अपने-अपने देश के राजाओं में जो बलशाली, समृद्ध सेनावाला राजा होता था, वह अन्य-राजा के राज्य पर आधिपत्य करने के लिए उन पर आक्रमण कर देता था। तब वह राजा अपनी पराजय या मृत्यु का अवसर देख अपनी रानी से परामर्श किया करते थे, क्या किया जाये ? नगर सेना से घिर गया है और सेना शिथिल पड़ गई है, ऐसे संकटकाल में वह रानी, अन्य देश में राज्यपद पर स्थित अपने भाई को रक्षासूत्र भेजती थी, तब वह भाई उन राजाओं से युद्ध करके रक्षा का संकल्प लेकर रक्षा किया करते थे, ऐसा अवश्य हुआ भी। पर यह कार्य लौकिक-प्रथा व व्यवहार में किसी परिस्थिति को लेकर हो सकता है, लेकिन इसको धर्म से जोड़ने का अर्थ धर्म के शुद्धस्वरूप का, संपूर्ण रूप से घात करना है।

सचमुच यदि हम सभी मिलकर घटित घटना के अंतरंग व बहिरंग पहलू पर मध्यस्थ भाव से विचार करें, तो मुझे बताइये इसके अन्दर 'रक्षाबंधन पर्व' नाम कौन से स्थान पर आया है, बल्कि लौकिक दृष्टि से भी आदि से अंत तक इसका कोई संबंध व धरातल नजर नहीं आता। मुझे बताओ। क्या उपसर्ग दूर होते ही लोगों ने घरों में उत्सव मनाये थे या मिठाइयाँ बनाकर खाई होंगी ? और उन्हें दूसरे घरों में बाँटा होगा या बहनें अपने भाइयों को रक्षा सूत्र बाँधने लगी होंगी या फिर नये वस्त्राभूषण धारण कर शरीर को सजाया होगा ? बोलो – क्या जवाब है ? बस सब निरुत्तर हो जाते हैं।

कैसा हृदय को झकझोर देने वाला समय था वह ! अरे ! सच्चा जैनी श्रावक ही होगा तो ऐसा अनर्थकारी, महापापमय निर्दय कृत्य कभी नहीं करेगा, उसका चित्त तो दया से गीला होता है, संवेदनशील होता है, ऐसे नरम चित्त में ऐसा कुकृत्य कभी नहीं हो सकता। एक ओर तो वीतरागता की उपासना और दूसरी ओर यह तीव्र रागादि की क्षुद्र परिणति। कितना विरोधाभास व विसंगति इसके लिए दिगंबर जैन श्रमण मार्ग में कोई स्थान नहीं है। परन्तु जो मिथ्या स्वार्थ व अशुभ की संभावनाओं से घिरे मानस हैं, वे इस दिन को रक्षाबंधन नाम देकर मुनीश्वरों की आराधना नहीं घोर विराधना करते हैं, किसी अविवेकी द्वारा चलाई गई एकांत पापमय परम्परा से जुड़कर धर्म का पतन करते हैं। यह छोटा नहीं बल्कि हमारा अक्षम्य अपराध है।

श्रोताओं की प्रवचन सभा को इंगित करते हुए पूज्य बाबूजी –

मेरे द्वारा प्रतिवर्ष पर्व संबंधी सम्यक् व स्वस्थ निर्देश एवं कुछ नये तथ्यों को सुनकर आपके मन में प्रश्नों की कतार खड़ी हो गयी होगी, अनेक लोग कुतर्क करते भी दिखाई देते हैं कि यदि हम ऐसा करने लगेंगे तो हमारे वर्षों से चले आये परिजनों, मित्रजनों के घनिष्ट संबंध टूट जायेंगे।

इसका सबल तर्क व युक्तिपूर्वक समाधान यह है कि प्रथम तो हम जैनी भगवान जिनेन्द्र के अनुयायी दिगंबर ऋषियों के व धर्म के अटूट आस्थावान कहे जाते हैं, जिनके मस्तक पर ये होते हैं, उस पुरुष के धर्म ही सर्वोच्च स्थान पर होता है, न कि लौकिक स्थूल व्यवहार – वह किसी भी भय, आशा व स्वार्थ लिप्सा के लोभ में प्राणों की कीमत पर भी, कभी धर्म विरुद्ध कार्य नहीं करेगा और न ही उनमें सम्मलित होगा।

दूसरा – यदि आप अपने पुण्य-पाप के प्रबल विश्वासी हैं तो हमें व्यवहार भंग होने की किंचित् भी चिंता, क्लेश, तनाव नहीं होना चाहिए – मैं तो कहता हूँ अरे! ये कच्चे सूत्र के कच्चे संबंध तो टूटने ही वाले हैं या मरण पर निश्चित टूटने वाले हैं, हमारे ये नाते-रिश्ते स्वप्नवत्, इस अल्प जीवन ही में इस भव तक ही सीमित हैं, कहता है परिवार मुझे बहुत चाहता है, सब मेरी आज्ञा में चलते हैं, हम मुसीबत में एक-दूसरे की रक्षा करेंगे, मैं देश, राष्ट्र, समाज की रक्षा करता हूँ। तब तत्त्वज्ञान कहता है, यह तेरा महा भ्रम है और कर्ताकर्म का महापाप है, जो निरन्तर मिथ्यात्व को पुष्ट कर रहा है। इसका फल असह्य होता है क्योंकि हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि परिवार चारों ओर खड़ा-खड़ा बिलख रहा है, और वह व्यक्ति निर्मोही की तरह छोड़कर चला जाता है। सारी मन्नतें अधूरी रह जाती हैं।

श्रीमद्जी ने कहा भी है कि 'लोक संग जिसकी जिंदगी का ध्रुव कांटा है, ऐसी जिंदगी बहुत महन्तता वाली हो, याने प्रतिष्ठा वाली, वैभव वाली हो तो भी इसी क्षण त्यागने योग्य है।''

तीसरा पहलू – आपके तर्क पर मेरा प्रश्न है – क्या परिवार, समाज, मित्रता आदि में आप अपने इच्छा विरुद्ध कार्यों में गुस्सा, झगड़ा, क्लेश, विवाद नहीं करते हैं ? हम स्वयं देखते हैं कि छोटी-छोटी सी अनावश्यक बातों पर युद्ध सा मच जाता है। फिर यह तो साक्षात् मोक्षमार्ग है, इसमें प्रवेश पर तो झगड़े की जड़ ही समाप्त हो जाने वाली है और अनंत भविष्य

में शांति ही शांति बरसने वाली है, देह ही नहीं रहेगा तो सांसारिक क्लेश व कष्ट भी कहाँ से होंगे?

एक बार तो सारा जगत मिलकर निंदा करे, अपमान करे, कटु वचन कहे, तो भी हमारे चित्त में जरा भी कलुषता-व्यग्रता, क्षुब्धता व द्वेष का अवभासन नहीं होना चाहिए क्योंकि ''संयोग में संयोगी भाव तथा स्वभाव में संयोगी भाव का नितान्त अभाव है।'' ऐसे अपने निरुपाधि स्वभाव की दृष्टि ही भव का भेदन करने वाली है। इस प्रकार बाल, वृद्ध सभी मिलकर धर्म का परिशुद्ध स्वरूप समझ लें तो दिगंबरत्व पर अपार श्रद्धा व भक्ति जाग उठेगी। ध्यान रहे कि ''लोकेषणा, लोकभय, लोकचिन्ता, लोकमति, लोकसंग से हमारे लोक का कभी अंत होने वाला नहीं है।'' अरे! मोक्षमार्गी (मोक्षार्थी) जीव तो सिंह सा निर्भीक होता है। वह साहस के साथ बोलता है कि ''ये बाहर की परिस्थितियाँ, विपत्तियाँ, चिन्तायें मेरे चैतन्य के वज्र किले को स्पर्श भी नहीं कर सकतीं।

यद्यपि मैं जो बात कर रहा हूँ यह वर्तमान के भौतिक परिवेश में शिक्षित हो या अल्प शिक्षित। किसी को भी कड़वी लगे या उनके हृदय को पीड़ा भी पहुँचे, लेकिन इसका फल तो मिश्री का अत्यन्त मधुर है, वे चाहे वर्षों से इसी परम्परा के सहभागी रहे हों, पर हमें इसकी चिन्ता क्यों? अरे! अज्ञान में तो बहुत दुष्कृत्य होते आये हैं, उसे भुला दें, क्योंकि सम्यक् ज्ञान का जागरण होते ही समस्त पूर्वाग्रह का प्रक्षालन हो जाता है, पश्चात्ताप में बदल जाता है और तब जीवन में सत्यं, शिवं, सुन्दरम् का मंगल प्रभात होता है।

इस अवसर पर श्रोताओं के अनुरोध से पूज्य बाबूजी के करुण वचनों द्वारा कथा का क्रमिक प्रवाह प्रारंभ होता है।

मध्यप्रदेश प्रान्त की उज्जैनी-नगरी में राजा श्रीवर्मा राज्य करता था। वह बड़ा धर्मप्रिय व दिगंबर-मुनिराजों का आस्थावान् था। उसके चार मंत्री बलि, नमुचि, बृहस्पति और प्रहलाद थे। वे जैनधर्म के महा-द्वेषी

थे। एकबार उज्जैनी के किसी वनस्थान पर विहार करते हुए आचार्यश्री अकंपन का सात सौ मुनियों के संघ-सहित पदार्पण हुआ। ऋद्धिधारी-मुनिराजों के प्रभाव से वहाँ अनेकप्रकार के वृक्षों पर फल लगने लगे, सारा वन हरा-भरा हो गया। राजा को जब इस बात की सूचना मिली, तो वह विस्मित हो उठा और मुनिसंघ के आगमन से वह प्रसन्न-हृदय, अपनी रानी-सहित बड़ी-भक्ति-पूर्वक मुनिराज की शरण में जा पहुँचा। चारों मंत्री भी पीछे-पीछे चलते हैं, राजा दंपत्ति ने मुनिसंघ की विनम्र-वंदना की, उस समय मुनिराज आत्मध्यान में लीन थे। मुनिराज से कोई आशीष-प्रत्युत्तर नहीं मिलने पर, मंत्रियों के मन में तीव्र क्रोधाग्नि जलने लगी। वे कुतर्क करने का साहस करते हैं, राजा ध्यानस्थ-मुनिराज को प्रणाम कर राजभवन की ओर लौट आते हैं। मार्ग में एक मंत्री बोला– ''महाराज! ये मुनि एकदम मौन हो गये हैं, ऐसा लगता है कि हमारे विद्वत्तापूर्ण प्रश्नों का उनके पास कोई जवाब नहीं है।'' दूसरा मंत्री उसी के स्वर में बोला ''अरे! ये तो इस वेश में ज्ञान का ढोंग किये बैठे हैं। यदि इनके पास सही ज्ञान होता, तो हमारे विषय पर वार्त्ता करनी थी।'' वह राजा मंत्रियों के कटुतापूर्ण, घृणित अशिष्ट- व्यवहार को चुपचाप देख रहा था।

उसी संघ के 'श्रुतसागर' मुनिराज आहार कर नगर से वन की ओर लौट रहे थे। राजा ने उनके दर्शन कर उन्हें प्रणाम किया। राजा उनसे वार्ता करनेवाले थे, इसके पूर्व एक मंत्री फिर व्यंग्य से बोला ''देखो, यह एक बैल और आ रहा है, भोजन से जिसका पेट फूला है। महाराज की आज्ञा हो, तो शास्त्रार्थ कर लिया जावे, तो हमको भी जिनधर्म की सच्ची समझ हो जायेगी।'' राजा श्रीवर्मा चाहते, तो इन्हें उसी समय दण्ड दे सकते थे; लेकिन वे किसी भी प्रकार उन्हें जिनधर्म के मार्ग में लाना चाहते थे। अत: राजा राजभवन की ओर प्रस्थान कर जाते हैं।

गुरु अकंपनाचार्य बड़े दूरदर्शी व तीक्ष्ण प्रज्ञासम्पन्न, अवधिज्ञान-

युक्त थे। उनका संपूर्ण-संघ को कहीं कोई भी परिस्थिति में विवाद नहीं करने व मौन रहने का आदेश था। यह मुनि-संघ अनुशासित व आज्ञाकारी था। किन्तु गुरु की निषेध-आज्ञा पर भी मुनि श्रुतसागर मंत्रियों से विवाद कर बैठे। बालि मंत्री बहुत विद्वान् तो था नहीं, मुनिराज श्रुतसागर के प्रचण्ड-तर्कों से पराजित हो गया। बालि सहित सभी मंत्रियों की इस पराजय से उनके भीतर मुनिराज श्रुतसागर व सम्पूर्ण-संघ के प्रति भी द्वेष की प्रचण्ड-अग्नि जलने लगी और वे चारों इसके प्रतिकार की प्रतीक्षा करने लगे।

मुनिराज श्रुतसागर पुन: संघ में लौटे, तो बलि आदि मंत्रियों से हुई वार्ता का सम्पूर्ण-वृत्तान्त आचार्यदेव अकम्पन को कह सुनाया, तो आचार्यश्री गंभीर व मौन-मुद्रा में भविष्य के संकट को देख रहे थे। यह उपसर्ग मात्र श्रुतसागर पर नहीं, अपितु संपूर्ण-संघ व दिगम्बर-शासन पर था। अनिष्ट की आशंका ने उनके चित्त को घेर लिया, उधर श्रुतसागर मुनिराज आचार्यश्री से नम्र-हृदय से अपने अपराध की क्षमायाचना कर प्रायश्चित्त की आज्ञा माँगते हैं, तो गुरु कहते हैं ''तुमने विधर्मियों से यह वाद करके बड़ा-अपराध किया है।''

दुर्बुद्धि अभिमानी-व्यक्ति से की गई वार्त्ता, द्वेष को ही बढ़ानेवाली है, लगता है संघ पर भारी संकट आने वाला है। इतना कह आचार्यश्री ने प्रायश्चित्त-स्वरूप उन्हें उसी निर्जन-स्थान पर जाकर रात्रि व्यतीत करने को कहा, जहाँ पर मंत्रियों के साथ वाद-विवाद किया था।

आज्ञा पाकर गुरु को प्रणाम कर वे श्रुतसागर-मुनिराज उसी स्थान पर जाकर ध्यानस्थ हो जाते हैं। उधर मंत्रियों को यह ज्ञात हुआ कि आचार्य ने उन्हें पुन: वनस्थान में जाकर खड़े होने का आदेश दिया है, तो वे अत्यधिक प्रसन्न हुए और वहाँ पहुँच गये तथा उस अपमान का बदला, तलवार के प्रहार से लेने लगे। चारों मंत्री ने ज्यों ही तलवार उठाई, तो उसी समय देवों ने उन्हें उठे हुए हाथों से वही कीलित कर दिया और इस

पवित्र-जिनशासन की रक्षा की। फिर भी श्रुतसागर मुनिराज परम-शांत-दशा में स्थित थे।

प्रात:काल होते ही मुनिराज ने चारों मंत्रियों को ''तुम्हारा कल्याण हो''—यह आशीर्वाद दिया। उनको भी सजा से मुक्त कर दिया गया। यह समाचार सारे नगर में फैल गया, राजा के पास जब यह वृत्तान्त पहुँचा, तो राजा अपने राज्य में ऐसा अनर्थकारी-कृत्य होता देख बड़ा लज्जित हुआ तथा मन ही मन मंत्रियों के दुष्ट-परिणामों को नहीं समझ पाने से वह अपने तुच्छ-राज लौकिक-पद को मन ही मन धिक्कारता है। अन्तत: उसने उसी समय चारों मंत्रियों को देश निकाला दे दिया। कठोर-दण्ड मिलने के पश्चात् भी वे मंत्री क्रोध से ग्रसित चित्त पुन: संघ से बदला लेने का अवसर ढूँढ़ते हैं। कुछ माह पश्चात् वे हस्तिनापुर के राजा 'पद्म' की शरण में पहुँचते हैं। राजा पद्म के पिता महापद्म पहले ही दिगम्बर-मुनि बन चुके थे, उनके छोटे भाई विष्णुकुमार ने भी मुनि-दीक्षा धारण कर ली। राजा स्वयं अल्पायु में ही इस पद पर आसीन हो गये, और राज्य का संपूर्ण कार्यभार संभालने लगे वे भी जिनधर्म के श्रद्धावान व सरल-चित्त थे।

राज्यभार के लिए स्वयं को एकाकी व अशक्त जान वे किसी को अपने सह-साथी के रूप में रखना चाहते थे। तभी घूमते-घूमते ये चारों मंत्री महाराज पद्म के यहाँ हस्तिनापुर पहुँचे। मंत्रियों ने राजा को अपनी वाक्-पटुतापूर्ण चतुराई से लुभा लिया। राजा पद्म मंत्रियों की छल-भरी वार्ता का भेद नहीं समझ पाया और उनसे प्रभावित होकर अपने दरबार में बड़े-बड़े पद प्रदान कर दिये। इसतरह उन्होंने भद्र-परिणामी राजा को अपने वश में कर लिया। राजा भी अपना कार्यभार हल्का होता जान, उनसे प्रसन्न रहने लगा।

और एक दिन उनकी कला-कौशल से प्रसन्न होकर राजा ने उनसे

कहा कि "तुम्हें जो चाहिए वह वरदान मांगो" उन्होंने कहा "राजन्! समय आने पर माँगेंगे।"

चारों मंत्री तो मुनिराज से प्रतिशोध की प्रतीक्षा में थे। उन्होने कुछ ही दिनों पश्चात् राजा से कहा, हमें आप सात दिन का राज्य दे दीजिए। राजा ने बिना कुछ सोच-विचार के यह बात स्वीकार कर ली। मंत्रियों को आचार्य अकम्पन के मुनिसंघ के नगर में पधारने का वृत्तान्त पहले से विदित था। चारों मंत्री सात दिन के लिए राज्यपद पर स्थित हो गये। एक दिन वह सात सौ मुनिराजों का संघ विहार करता हुआ नगर के वनस्थान में आया, वहाँ सभी मुनि भगवन्त ध्यानस्थ थे। बलि को जब इस बात का पता चला, तो उसका हृदय क्रोधानल से जल उठा और उन्होंने अच्छा-अवसर जान मुनि-संघ के चारों ओर हजारों लकड़ियों का जाल बिछा डाला और उनकी क्रोधाग्नि की धधकती ज्वाला ने चारों ओर आग लगा दी। भीषण-अग्नि की लपटें और धुएँ से मुनिराज का शरीर, कपाल, अंगादि जलने लगे, कंठ अवरुद्ध हो गये। इस दुष्कांड को देख हजारों श्रावक विह्वल-चित्त शोक में डूबे, घबराकर इधर-उधर भागने लगे। नगरी में हाहाकार था, सभी उपसर्ग दूर करने का उपाय सोच-सोच कर परेशान थे। तीन-चार-दिवस तक ज्वाला जलती रही। तेज-हवा का स्पर्श पा धधकती रही।

अचानक श्रावकों ने किसी नगर में एक क्षुल्लक को इस घटना से अवगत कराया कि 'मुनिसंघ पर उपसर्ग हुआ है, इसे दूर करना है।' उन क्षुल्लकजी को पता था कि मुनिराज विष्णुकुमार (राजा पद्म के भाई) को विक्रियाऋद्धि प्राप्त है, उनसे यह उपसर्ग दूर करने की प्रार्थना करना चाहिए। क्षुल्लक व श्रावकजन वहाँ जाते हैं और उन सैंकड़ों मुनिवरों की रक्षा के लिए अनुनय करते हैं। मुनि विष्णुकुमार को स्वयं अपनी विक्रियाऋद्धि का पता नहीं था। क्षुल्लक ने उन्हें इस ऋद्धि से अवगत कराया, तब स्वयं परीक्षा के लिए उन्होंने अपना एक हाथ बढ़ाया तो वह

मानुषोत्तर-पर्वत पर जा पहुँचा। वे शीघ्र ही 'हस्तिनापुर' जाते हैं वहाँ उन्होंने अपने भाई (राजा पद्म) को उलाहना दिया कि तुमने इन्हें राज्य देकर इस कुल व जैन शासन को कलंकित किया है, वह राजा पद्म विष्णु-मुनिराज से क्षमा-याचना करते हैं।

विष्णु-मुनिराज श्रेष्ठ-तपस्वी वैराग्यवंत थे। दिगम्बर-मुनिराजों के उपसर्ग से उनका हृदय करुणा-प्लावित हो उठा और उन्होंने गुरु-आज्ञा से दीक्षा छेदकर विक्रिया द्वारा बावनिया-साधु का वेश बनाया और राजा बलि के पास पहुँचे। वह राजा के पास जाकर प्रणाम करते हैं और अपनी पामरता दिखाते हुए कुछ याचना करते हैं। राजा बोला "मेरे राज्य में आपको जो चाहिए, वह माँगो, मैं सबकुछ दे सकता हूँ।" बावनियाँ साधु कहते हैं "मुझे तो मात्र तीन कदम भूमि चाहिए।" राजा हँसकर बोला— "और कुछ बड़ी-वस्तु माँगो।" वह कहते हैं "नहीं, बस मेरे लिए तो यही पर्याप्त है।"

तब बालि ने कहा जहाँ चाहो, वहाँ की तीन-कदम धरती ले लो। ज्योंहि बावनियां-साधु ने अपनी विक्रिया को फैलाया, तो एकदम से पूरे राज्य-सहित समूचे देश की धरती को नाप लिया, दूसरा कदम मानुषोत्तर-पर्वत पर जा रखा, फिर साधु राजा को बोले कि "राजन्! तीसरा-कदम कहाँ रक्खूँ?" यह कहते हुए उस बालि के सिर पर रख दिया। बालि घबरा गया और "क्षमा कीजिए, क्षमा"—यह कहकर चरणों में गिर पड़ा और अपनी हार स्वीकार करते हुए साधु से क्षमायाचना करता है। क्षण मात्र में उसके मान का नशा उतर जाता है, उसी समय से वे चारों मंत्री भी जैनधर्म के अनुयायी बन जाते हैं।

पवित्र-जैनधर्म के जय-जयकार से सारा नगर गूँज उठा। पश्चात् बावनियां-वेश परिवर्तन कर विष्णुकुमार ने दीक्षा छेद का प्रायश्चित्त स्वीकार करते हुए पुनः दीक्षा अंगीकार की और आत्मसाधना के उग्र-पुरुषार्थ द्वारा केवलज्ञान प्राप्तकर उसी भव में मोक्ष प्राप्त किया।

हम इस पूरी घटना का ज्यों का त्यों सूक्ष्मता से अवलोकन करें तो बताइये इसमें रक्षाबंधन कौन से कोने में छुपा है ? आद्योपांत रक्षासूत्र की चर्चा कही नहीं है, इसलिए रक्षासूत्र से इसका कोई संबंध भी नहीं है। पुनः कहता हूँ कि सारे ही आगम में भी सात सौ मुनिराजों के उपसर्ग निवारण की चर्चा तो आई है, किन्तु उसके उपरांत रक्षासूत्र बांधने व मिठाइयाँ खाने-खिलाने का कार्यक्रम चला हो—ऐसा कथानक कहीं नहीं आया। अरे उपसर्ग से आक्रान्त, मुनिराजों को क्षणमात्र के लिए भी याद नहीं किया जाता, न ही मुख पर तनिक उदासी। ऐसे में क्या हम दिगंबर-संतों के पदानुगामी कहलाने के अधिकारी हैं। और दूसरी बात कि जैनदर्शन तो बलि आदि जैसे अज्ञान से ग्रस्त महापापियों के प्रति भी मैत्री व मध्यस्थता सिखाता है, न कि क्षणिक कलुषित-परिणाम विकार के साथ राग-द्वेष और घृणा करना।

सच्चाई से रक्षा पर्व की रक्षा करने की क्षमता हमारे में है तो मेरा पुनः पुनः अनुरोध है कि संकल्प पूर्वक तीव्र राग की पोषक इस प्रथा का दृढ़ता पूर्वक निषेध करें क्योंकि इस दिवस में अनेक विकृतियों का समावेश हो चुका है, तो हमारा उत्तरदायित्व है कि हम सभी अखण्ड शक्ति के साथ इनका बहिष्कार कर इनमें परिमार्जन करें, तब तो हम धर्मात्मा कहलाने लायक हैं, नहीं तो जैन भी नहीं! और सन्मार्गदर्शक माँ जिनवाणी की आज्ञा से कृत्रिम व्यवहार को समाप्त कर सुन्दर, सुखद, वैरागी वायुमण्डल का निर्माण करें, तभी इस परम अहिंसा धर्म की रक्षा हो सकेगी। ऐसा सात्त्विक, संयमित, मर्यादित व अनुशासित जीवन ही व्यक्ति के विकास का द्वार खोलता है, इस मणिमयी मनुष्य जीवन में एक मात्र निश्चय रत्नत्रय धर्म ही शाश्वत सुख का साधन है। भव के भय का छेदक है, जो हमारे दीर्घ संसार को चैतन्य की एक अनुभूति में उड़ा देने वाला है। इसलिए यही आराधने योग्य है, अन्य कोई नहीं।

विश्व व्यापी वात्सल्य-अंग तो सम्यक्त्व का प्रमुख-अंग है। जो धर्म

व धर्मात्माओं के प्रति प्रतिसमय उछलकर आता है, आना भी चाहिए, हर एक जैन-श्रावक को। पू. गुरुदेव ने भी इस पर्व पर दिगम्बर-मुनिराजों का यशोगान करते हुए बोला है–"धर्मात्मा को या धर्म की प्रीतिवाले जिज्ञासु को धर्म के प्रति व धर्म- धुरंधर ज्ञानी, मुनिराजों के प्रति परम-प्रीति अवश्य होती है। ऐसे वात्सल्य के साथ धर्म-प्रसंगों में धर्मात्माओं, मुनिराजों को याद करना चाहिये।" अतः हमें पू. गुरुदेव की परम्परा की पवित्रता को बनाये रखने के लिए वैराग्य की छाया में इसे 'गुरु-उपकार-दिवस' के रूप में मनाना चाहिए–यही इस दिन का पावन-प्रदेय है।

वाह रे दिगंबर-संत! जिनकी मुद्रा पर तनिक कष्ट की रेखा नहीं। जैसे लगी होगी आग किसी जंगल में, जलता होगा कपास का पिण्ड, अन्तस् में प्रशान्त-महासागर हिलोरें ले रहा है। सचमुच, हमारी जैन संस्कृति के शिखामणि दिगम्बर साधु का सारे विश्व के मणि मुक्ता से भी तोल नहीं हो सकता। इस पर गर्व है हमें।

ऐसे तपोधनी वीतरागी सात सौ संतों को हम बारंबार कोटि-कोटि वंदन करते हैं।

प्रेरणा - पूज्य बाबूजी के मुखारबिन्द से पर्व का प्रांजल स्वरूप सुन सैंकड़ों बन्धुओं का हृदय परिवर्तन हुआ है, अतः वे हमारे लिए साधुवाद के पात्र हैं।

❁❁❁

सन्त-वन्दन

– 'युगल' एम.ए.,कोटा

ओ मानवता के केन्द्र बिन्दु
नश्वर जग के शाश्वत प्रकाश
ओ नग्न अहिंसा नग्न सत्य
है भौतिकता के महानाश

हम संसारी तू मुक्ति दूत
तू पुण्य पूत हम महापाप
हम हैं जड़ता के मूर्तरूप
चेतन महान चेतन विराट

हम चूम रहे जग की छाया
तुम छोड़ चले जग की माया
जग तुझे चूमने को चलता
हम चूम चल जग की काया

तुम लक्ष वीण के एक तार
तुम लक्ष-लक्ष के एक राग
तुम कोटि-कोटि के हिय-प्रसून
तुम स्वयं सिद्ध से साम्यवाद

तेरे मानस में सत्यवास
तेरी वाणी में विश्व क्षेम
निज चिंतन तेरी निधि असीम
तुझको न अपेक्षित मुक्त हेम

हे महात्याग! हे महाभाग!!
कितना अनंत तेरा प्रयाण
तेरी पुनीत युग चरणों में
शत शत प्रणाम शत शत प्रणाम।